बच्चों में भेद नहीं

साबरा

वसीयत करनी है। बेटी और बेटे के नाम करनी है। जब बताया तो सब शक्ल देखने लगे। वसीयत और बेटियों के भी नाम। मैंने कहा- 'हां, क्यों नहीं! मैं मां हूं। एक ही कोख में पले दोनों। बेटे ने पूरे नौ महीने में जन्म लिया। दोनों बेटियों ने साढ़े नौ महीने में जन्म लिया... तो बेटियों ने तो कोख से ही अपना हक़ ज़्यादा लिया। पैदा होने के समय मुझे नहीं लगा कि बेटी के समय कम दर्द थे या बेटे के ज़्यादा दर्द थे। एक जैसे दर्द दोनों के थे। दोनों बेटी और बेटों ने मेरा दूध पिया तो मैं फ़र्क़ कैसे कर सकती हूं- बेटी और बेटे में?

भला ऐसा क्यों?

फ़र्क़ तो आदमी करते हैं कि वे ही के नाम वसीयत का हक़दार मानते हैं। वंश चलाने वाले। बेटे को ही समझते हैं। बेटी को चारदीवारी ही मिलती है। मां के घर में भाई और बाप, ससुराल में पति और घर के दूसरे मर्द। फ़र्ज़ के नाम पर घर के दायरों में कैद और हक़ के नाम पर बेघर, लेकिन मैं अपनी बेटी को चारदिवारी में नहीं रख सकती, न ही उसका हक़ मार सकती हूं।

एक मां का दूध पिया तो फ़र्क़ क्या है बेटे और बेटी में। बच्चे को जन्म तो मां देती है, लेकिन बाप की भी भागीदारी होती है बच्चे में। तब तो नहीं सोचते हम कि बेटी या बेटा हो सकता है। यह तो हम सिर्फ़ जन्म के बाद ही कहते हैं कि बेटी तो पराया धन है- बेटी घर का काम करेगी और बेटा मौज उड़ाएगा गलियों में। बेटी घर भी संभाले और मां बाप के लिए रोटी भी बनाकर दे। फिर भी जायदाद बेटा पाए। कैसा है ये समाज जो इतना फ़र्क़ करता है बेटा और बेटी में।

मैं नहीं चाहती कि...

मैंने जो भुगता है- मेरे अंदर जो दर्द है, मैं वो दर्द बेटियों को भी महसूस न हो। मेरे मां बाप मुझसे बहुत प्यार करते थे। वो चाहते थे कि मैं उनके घर में रहूं। मेरी मां ने मेरे नाम वसीयत लिखी, लेकिन रजिस्टर नहीं करायी। उनके गुजर जाने के बाद मेरे बड़े भाई का बेटा, धोखे से सारी संपत्ति बेच आया। मुझसे मां का घर नहीं छोड़ा जाता था। मैं मां से बहुत प्यार करती थी। मैं घर की ज़िम्मेदारी भी पूरी निभाती थी। मां के चाहते हुए भी मां का घर मुझे नहीं मिल पाया। वह घर तो मैंने लड़ झगड़ कर ले लिया, लेकिन यह नौबत आयें क्यो?

ऐसा क्यों?

समाज की सोच तो हर मां बाप को घेरे रखती है। संपत्ति का नाम आते ही बेटों की याद आती है। क्या हम बेटियों को प्यार नहीं करते?

आखिर को वसीयत सिर्फ़ रूपए पैसे की बात तो नहीं है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्यार और विश्वास का भी लेन देन है। ज़िम्मेदारी का अहसास है। जब एक ही परिवार में बेटे बेटी का जन्म और पालन पोषण होता है। दोनों एक ही माता पिता की संतान होती हैं तो फिर बेटे और बेटी में फ़र्क़ क्यों? क्यों हम ऐसे सवालों से आंखें चुराते रहते हैं? कोई चुराए आंखें, पर मैं तो ऐसा नहीं कर सकती। मैं कोई अहसान नहीं करने जा रही बेटियों के भी नाम संपत्ति करके। मुझे तो जितना दर्द बेटे का है, उतना बेटी का भी है।

मैं समाज को बताना चाहती हूं कि यह सब नज़रिए की बात है। किसी को बेटा नहीं है तो वे अपनी संपत्ति बेटी के नाम कर देते हैं, तब भी उसे यही सुनने को मिलती है कि- 'बेचारी की किस्मत में भाई नहीं है इसलिए मां बाप के पास रह रही है। मुझे बहुत गुस्सा आता है समाज के नज़रिए पर। हम क्यों ऐसा सोचते हैं? इसलिए मेरे फैसले पर सबको हैरानी हो तो भी क्या?

मेरा फैसला

मैं अपनी ही समझ और सोच के साथ करूंगी वसीयत- बेटी और बेटे के नाम। बेटों को नहीं भटकाना दर-ब-दर, पर बेटों के साथ फ़र्क़ नहीं करना। जो फ़र्क़ समाज बेटियों के साथ करता है, वही फ़र्क़ हम बेटों के साथ करके उसी हिंसा को दोहरा रहे हैं। इसलिए दोनों को बराबर का हक़ हो- न किसी को ज्यादा, न किसी को कम। दोनों ही मेरी जायदाद के हक़दार होंगे। मेरी हर चीज़ के दोनों

वसीयत सिर्फ़ रूपए पैसे की बात तो नहीं है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्यार और विश्वास का भी लेन देन है। ज़िम्मेदारी का अहसास है। जब एक ही परिवार में बेटे बेटी का जन्म और पालन पोषण होता है, दोनों एक ही माता पिता की संतान होती हैं तो फिर बेटे और बेटी में फ़र्क़ क्यों?

हक़दार होंगे- बेटी भी, बेटा भी, चाहे वो घर हो या ज़मीन, गांव के घर खेत, या कोई और चीज़ गहना। अभी से बता दिया ताकि बेटों के दिमाग में ये न रहे कि मां की हर जायदाद के हम ही हक़दार हैं।

ज़िम्मेदारी बराबर-हक़ बराबर

मेरे दो बच्चे शादीशुदा हैं। एक बेटी और एक बेटे की अभी शादी होनी है। हम कहते हैं बेटी की शादी में ज़्यादा खर्च होता है- बारात का खर्च, किराया, दहेज, खाने पीने का खर्च, मिलनी, भेंट, शामियाना-तमाम खर्च होते हैं। मगर यही सब तो बेटे की शादी में भी होता है। शिक्षा, पोषण, सभी में तो बराबर का खर्च, मेहनत। फिर क्यों भेदभाव दोनों के बीच-एक को जायदाद का वारिस, एक को पूरी तरह जायदाद से महरूम करना। मैं तो कभी नहीं कर सकती ऐसा। बेटे ज़िम्मेदारी उठाएं तभी तो न वे मेरी विरासत के हक़दार होंगे।

बेटों के दिमाग में पहले ही घुसा दिया मैंने कि बहनों का हक़ तुम्हारे बराबर हैं। वो अपने दिल दिमाग़ से तैयार हैं कि मां की हर चीज में बहनों का भी हक़ है। सच बात तो यह है कि दुख दर्द, हारी बीमारी में जितनी खिदमत बेटी करती है, उतना बेटे नहीं करते। तो उसे बराबर का हक़ क्यों न हो? *